डॉ. विजय मिश्र

हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित भौतिक विज्ञानी एवं संस्कृत विद्वान। कवि के तौर पर न्यू इंग्लैंड, दक्षिण एशिया के अनेक देशों में चर्चित एवं सफल यात्राएँ कीं। अनेक गरिमापूर्ण कवि सम्मेलनों में भागीदारी। विगत १८ बरसों से हार्वर्ड विश्वविद्यालय में सालाना भारतीय कविता पाठ का आयोजन कर रहे हैं।

सम्पर्क : १८०, बेडफोर्ड रोड, लिंकन, एमए. ईमेल : misra.bijoy@ gmail.com

विमर्श

रामायण : आधुनिक विमर्श

इहलोक और परलोक

विश्व ब्रह्मांड में जीव की सृष्टि कैसे हुई - इस बारे में अभी तक कोई खास जानकारी वैज्ञानिकों ने नहीं निकाली है। एक बार जीव का निर्माण हुआ तो आगे का रास्ता निकाला जा सकता है। लेकिन यह अब भी रहस्य ही है कि जीव शरीर को क्यों छोड़ देता हैं? इस बाबत मौन एक संज्ञा बन जाती है। मौन खोदने के लिये नहीं है। जिन्दगी कहाँ से आई और कहाँ गयी - यह किसी को पता नहीं है। दुनिया अपनी-अपनी परम्परा और समझ के मुताबिक मुर्दे का संस्कार करती है और कभी इस संबंध में लड़ाई भी करती है।

पाश्चात्य दार्शनिकों ने इंसान की ज़िन्दगी के ऊपर विचार करके यह निष्कर्ष निकाला कि हरेक इंसान की पहचान अलग होती है, तो हरेक इंसान की ज़िन्दगी भी कुछ अलग होनी चाहिये। उनकी सोच में यह स्थिर हुआ कि मनुष्य के शरीर के पीछे एक आत्मा छिपी हुई है। जो मनुष्य की करनी का कारण बनता है और वह उससे कर्मों का हिसाब भी मांगता है। ऐसी आत्मा मृत्यु के पश्चात भी शरीर में प्रवेश कर सकती है और अपनी मर्जी से वापिस जा सकती है। तमाम तरह की धारणाओं में एक यह भी है कि इस कारण से मृत शरीर को दफनाने का प्रबन्ध किया गया। शरीर के पास उसके व्यवहार की सारी चीजें भी दफन होती हैं। यह प्रथा अभी भी चालू है, खराब इंसान की आत्मा नर्क को जाती है और वहाँ से वापिस नहीं आ सकती।

> हरेक इंसान की पहचान अलग होती है, तो हरेक इंसान की ज़िन्दगी भी कुछ अलग होनी चाहिये। हरेक मनुष्य के शरीर के पीछे एक आत्मा छिपी हुई है। जो मनुष्य की करनी का कारण बनती है और वह उससे कर्मों का हिसाब भी मांगती है।

भारत के वेद पंडितों ने इस मामले को कुछ दूसरे रूप से देखा। उनको पहला विचार आया कि मुर्दे में आत्मा वापिस नहीं आ सकती, फिर मुर्दे को सजा सम्हाल कर दफनाने की कोई जरूरत नहीं। शरीर और आत्मा अलग हैं, आत्मा छूट गयी तो शरीर एक लकड़ी के टुकड़े जैसा हुआ। मुर्दे को साफ करके नदी में प्रवाहित करने की भी परम्परा है लेकिन अधिसंख्य के विचार में मुर्दे को जला देना ही ठीक समझा जाता है और भारत के हिन्दू समाज में यह प्रथा अभी चालू है।

मनुष्य को क्या करना उचित होता है और क्या अनुचित होता है - इसका विश्लेषण भारत में बहुत पहले से चला आ रहा है। जिन्दगी का कुछ मूल्य होता है और इस मूल्य की खातिर समाज की नीति में है, अहिंसा और सत्य आदि नीति के मानक बन गये। संसार में चलने के लिये संपूर्ण अहिंसा हम पालन नहीं कर सकते। लेकिन हम सच बोल सकते हैं, अपना

> धर्म दुनिया को रखता है, चलाता है, हवा, पानी, सूरज, अपने धर्म के अनुसार चलते हैं, मुक्ति के लिये मनुष्य को भी धर्म के अनुसार चलना होगा। प्रत्येक मुहूर्त अपने कर्तव्यपालन को धर्म कहा गया।

वचन रख सकते हैं। सारे का सारा नीति के पालन की कहानी को मनुष्य का कर्म माना गया। यह नहीं कि क्या हुआ, क्यों हुआ- बल्कि जो हुआ उससे कर्म निकला। भारतीय दार्शनिकों ने सोचा कि अपने कर्म के अनुसार इंसान को बार-बार जन्म लेना होगा, ताकि अपने कर्म सुधार सकें और पुनर्जन्म से छुट्टी मिले। तो यह विचार ऐसा हुआ कि मनुष्य की आत्मा अपने शरीर को छोड़कर अपने कर्म के अनुसार किसी दूसरे शरीर में प्रवेश करती है। इसका न्याय निर्णय मौत के बाद परलोक में होता है। धरती पर के आवास को इहलोक कहा गया और शरीर विहीन आवास परलोक हो गया। परलोक में शान्ति और सुविधाएँ मनुष्य के कर्म से नियंत्रित होंगे। इसलिये हमें इहलोक में काफी सावधानी से चलना होगा। यह हुई समाज सुधार के लिये वेद की नीति। इहलोक का सुख परलोक में दुःख हो सकता है। सभी कार्यों को हमें निष्ठा और सत्य के साथ करना होगा। कर्तव्य के सामान्य उल्लंघन से परलोक में काफी तकलीफ आ सकती है। वेद के मार्ग से चलो उससे ही अपने को छुटकारा मिलेगा।

ऐसी वैदिक नीति को शास्त्रज्ञों ने धर्म की संज्ञा दी। धर्म दुनिया को रखता है, चलाता है। हवा, पानी, सूरज, अपने धर्म के अनुसार चलते हैं। मुक्ति के लिये मनुष्य को भी धर्म के अनुसार चलना होगा। प्रत्येक मुहूर्त अपने कर्तव्यपालन को धर्म कहा गया। कर्तव्य सिखाया नहीं जाता, खुद ही परिवार से, समाज से और शास्त्रों की नजीर से हम सीखते हैं। गुरु से भी उपदेश ले सकते हैं लेकिन हमको काम कराके दिखाना होगा। काम के समय हम अपनी मर्जी से काम करते हैं, कोई गुरु नहीं होता, न कोई शास्त्र। धर्म और अधर्म में यही अन्तर है, वाल्मीकि श्रीराम का चरित्र बनाते हैं, जो हरेक अवस्था में अपने कर्तव्य पालन कर सकें। इसलिये उनको महात्मा कहा गया, बाद में वे भगवान के अवतार बन गये।

धर्म में टिके हुए कर्तव्यपालन तक एक लक्षण होता है कि हम अपना काम भाव से करते, छल से नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि धर्म प्राकृतिक है। प्रकृति के संभार में छल नहीं, सभी प्राणी, पौधे और कीट आपस में धर्म से जुड़े हुए हैं, मनुष्य का सभी संपर्क ऐसे ही धर्म से जुड़ा हुआ है। धर्म में खुदी नहीं होती है, आपसी होती है, ऐसी आपसी बर्ताव में अपने कहे हुए वचन से अपने मन की शुद्धता की परीक्षा की जा सकती है। खुशमिजाज से अपने काम हासिल करने के लिये हम कुछ न कुछ बोल देते हैं और उसको भूल जाते हैं। अपने कहे हुए वचन का पालन करना मनुष्य का सबसे बड़ा धार्मिक कर्तव्य कहा गया है।

पिता दशरथ के कहे हुए वचन को पालन करना वाल्मीकि रामायण की भूमिका है। किसी पुराने युद्ध में गये हुए समय राजा दशरथ काफी घायल हो गये थे। रानी कैकेयी उनके साथ थी और उन्होंने रात भर राजा की सेवा करके उनको संभाला था। उस मौके में राजा दशरथ ने कैकेयी के कार्य से संतुष्ट होकर उन्हें दो वरदान दिये थे।

श्रीराम के अभिषेक के पूर्व रात्रि में कैकेयी ने दासी मन्थरा के प्ररोचन से उन दो वरदानों की याचना की। राजा दशरथ की अक्ल काम नहीं की, वह चुप बैठ गये। रामजी ने देखा कि अपने पिता के परलोक चिन्ता ह्रास करने के लिये उनका वन को जाना उचित ही है। श्री राम वन को चले गये और दशरथ बाद में चिल्लाते रहे। अपने प्यारे पुत्र के विरह के शोक से दशरथ की मौत हुई।

वन को जाने की निष्पत्ति में श्रीराम अपने परलोक का भय बाद में लक्ष्मण के सामने प्रकाश करते हैं। पुत्र होने के नाते पिताजी के सत्य की रक्षा करना वह अपना कर्तव्य समझे। अगर वह अपने कर्तव्य पालन नहीं करते तो उनके अपने धर्म में त्रुटि निकलती। ऐसे पिताजी के सत्य रक्षा करने के लिये और अपने कर्तव्यपालन के लिये वह घर बार एवं समाज सभी को छोड़कर वनचारी बनते हैं। यह है रामायण में परलोक भय की कहानी।

सत्य वचन और शाप

रामायण में वशिष्ठ, भरद्वाज जैसे चरित्र आते हैं - जो अपनी मर्जी से कमाल दिखाते हैं। अपना सारा जीवन शुद्धता और सत्य से चलाने वालों के वचन भी सत्य बन जाते हैं, वह जो कुछ बोलते हैं वैसा ही होता है। पूर्ण सत्य के जीवन में कोई कर्म नहीं है।

और भी चरित्र होते हैं जो दूसरे को शाप दे सकते हैं। जो सत्य तपस्या में लीन हुआ हो, कोई उसका नुकसान करे तो उस तपस्वी को शाप देने का अधिकार है। राजा दशरथ एक अन्धे तपस्वी के पुत्र की मौत में भागीदार थे। उस तपस्वी ने दशरथ को वृद्ध समय में पुत्र विरह का शाप दिया था। ठीक मौत के पहले राजा दशरथ उसको याद करते हैं। यह रहा परलोक का भय - मौत के समय भय आता है, सताता है। मृत्यु के बाद क्या मालूम? ■